© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

काव्यप्रकाश में अभिधा शक्ति के विवेचन में व्याकरणमत

(Kavyaprakash Men Abhidha Shakti Ke Vivechan Men Vyakaranmat)

Dr. Pramod Kumar Mishra

डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र

सहायक प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,

राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती,

उत्तर प्रदेश, भारत।

शोधसार : काव्यशास्त्र में शब्द से अर्थ ज्ञान के लिए शब्द शक्तियों का ज्ञान होना आवश्यक है। इन्हीं शब्द शक्तियों को वृत्ति या व्यापार भी कहते हैं। नागेशभट्ट के अनुसार अर्थबोधानुकूल पद–पदार्थ सम्बन्ध रुप शक्ति ही वृत्ति है। साहित्यशास्त्र में सामान्यतः शाब्द व्यवहार से अर्थ–प्रत्यायन के लिए तीन शब्द शक्तियाँ स्वीकृत हैं–अभिधा, लक्षणा एवं व्यञजना या तात्पर्या। मीमांसक मतानुयायी आचार्य अर्थ ज्ञान के लिए अभिधा, लक्षणा एवं तात्पर्या को स्वीकार करते हैं, जबकि ध्वनिवादी आचार्य अभिधा, लक्षणा एवं व्यञजना को मानते हैं। न्याय एवं वेदान्त अभिधा एवं लक्षणा को, व्याकरणशास्त्र अभिधा एवं व्यञजना को मानता है। व्यक्तिविवेककार आचार्य महिमभट्ट एवं मीमांसक आचार्य मुकुलभट्ट शाब्द व्यवहार के लिए केवल एक ही शक्ति (वृत्ति) अभिधा को स्वीकार करते हैं–

शब्दस्यैकाभिधा शक्तिरर्थस्यैकैव लिङ्गता।
न व्यंजकत्वमनयोः समस्तीस्त्युपपादितम्।।

(व्यक्तिविवेक 1. 27)

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने द्वितीय एवं तृतीय उल्लास में शब्द शक्तियों का विवेचन किया है। मम्मटाचार्य शाब्द व्यवहार से अर्थ–प्रत्यायन के लिए तीन शब्द शक्तियाँ स्वीकार करते हैं–अभिधा, लक्षणा एवं व्यञजना। मम्मट ने काव्यप्रकाश में अभिधा एवं लक्षणा का विवेचन मीमांसक आचार्य मुकुलभट्ट के अभिधावृत्तमातृका के आधार पर किया गया है। मम्मट ने काव्यप्रकाश के अतिरिक्त अपने ग्रन्थ 'शब्दव्यापारविचार' में मुकुलभट्ट के मतों का खण्डन एवं समन्वय करके शब्द–शक्तियों का स्पष्ट एवं विस्तृत विवेचन किया है।

संकेताक्षर (Keywords**)** : अभिधा (शक्ति), व्याकरणमत, जाति, गुण, क्रिया आदि।

काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने अभिधा शक्ति का लक्षण करते हुए कहा है– 'स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते।'[1] अर्थात् जिससे हमें मुख्यार्थ (वाच्यार्थ) की प्रतीति होती है। उस शाब्द व्यापार को अभिधा

कहते हैं। मुकुलभट्ट मुख्यार्थ का स्पष्ट विवेचन करते हुए कहते है कि जिस अर्थ की प्रतीति शब्द के व्यापार से हो वह मुख्य माना जाता है।[2] इसे मुख्य कहने का कारण यह है कि जैसे मुख, हाथ आदि अन्य सभी अङ्गों के पहले दिखाई देता है उसी प्रकार वह अर्थ (मुख्यार्थ) भी अन्य सभी प्रतीयमान अर्थों से पहले विदित होता है।[3]

मम्मट ने अभिधा शक्ति का भी विवेचन दार्शनिक पृष्ठिभूमि में किया है। आचार्य ने अपने लक्षण में प्रयुक्त 'स' शब्द का अर्थ साक्षात् संकेतित अर्थ किया है।[4] यह संकेत किसमें होता है? संकेतग्रह के विषय में मम्मट ने चार दार्शनिक मतों का विवेचन किया है–'संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा'[5] अर्थात् संकेतित अर्थ के चार भेद होते हैं– जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा शब्द। संकेतग्रह के बाद ही शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है। जिस शब्द में संकेत गृहीत नहीं रहता उससे अर्थ की प्रतीति नहीं होती है, अतः यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि शब्द संकेत की सहायता से ही अर्थ की प्रतीति कराता है।[6] मम्मटाचार्य के अनुसार जिस शब्द से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वह संकेतग्रह के बाद होती है। यह संकेतग्रह किसमें (जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा) होता है। इस प्रसङ्ग में मम्मट ने संकेतग्रह के चार दार्शनिक मन्तव्यों का विवेचन किया है–

(i) व्याकरणमत (ii) मीमांसकमत

(iii) नैयायिकमत (iv) बौद्धमत

वैयाकरणमत

संकेतग्रह के सम्बन्ध में मम्मट ने सर्वप्रथम वैयाकरणों के मत का विवेचन किया है। मम्मट के द्वारा उद्धृत 'संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादि–र्जातिरेव वा' में प्रथम 'जात्यादिः' वैयाकरणों की ओर संकेत करता है। जैसाकि बालबोधिनीकार ने कहा भी है–संकेतितः संकेतग्रहविषयोऽर्थः चतुर्भेदश्चतुर्विधो भवति। तदेवाह जात्यादिरिति। आदिना गुणक्रियायदृच्छानां ग्रहणम्। महाभाष्यकार मतमिदम्।[7] मम्मट के अनुसार यद्यपि अर्थ की क्रिया–कारिता या वस्तु के कार्य करने के कारण प्रवृत्ति–निवृत्ति योग्य व्यक्ति ही होता है, तथापि व्यक्तियों के अनन्त्य होने से तथा व्यभिचार दोष आ जाने के कारण व्यक्ति में संकेत मानना ठीक नहीं है। यदि व्यक्ति में संकेत मान लेंगे तो गौः (जाति) शुक्लः (सफेद रंग वाली), चलो (क्रिया), डित्थ (संज्ञा) इस प्रकार का विभाग नहीं हो सकता इस लिए उपाधि में ही सङ्केत मानना चाहिए।[8]

शब्दों का प्रयोग अर्थ ज्ञान के लिए किया जाता है। जिस अर्थ के लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है शास्त्रीय भाषा में उसे प्रवृत्तिनिमित्त की संज्ञा दी जाती है। प्रवृत्ति–निमित्त का शाब्दिक अर्थ है, प्रवृत्ति – अर्थात् किसी काम को करने के लिए कुछ क्रिया करना एवं निमित्त का अर्थ है–कारण। शब्द का प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य यही होता है कि इससे कोई प्रयोजन की सिद्ध हो और उससे कोई कार्य लिया जाय, इस प्रकार जो अर्थ क्रियाकारी होगा वही शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त कहा जायेगा। 'अर्थक्रियाकारी' शब्द का अर्थ है–प्रयोजन को सिद्ध करने के उद्देश्य से क्रिया अर्थात् किसी कार्य को करने की योग्यता रखना। शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त वही हो सकता है, जिसमें कार्य सम्पादन की योग्यता हो। प्रवृत्ति या निमित्त की योग्यता व्यक्ति में होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति में ही सङ्केत (शक्ति) मानना ठीक है, किन्तु यदि व्यक्ति में जब हम संकेत मानते हैं तब आनन्त्य एवं व्यभिचार दोष आ जाता है। व्यवहार को देखकर बालक व्यक्ति में ही संकेत ग्रहण करता है। यदि बालक 'गाय' शब्द से जो व्यक्ति ही समझता है अर्थात् गाय शब्द का अर्थ वही एक गाय है। जिसको वह व्यवहार में देखता है, फिर दूसरी गाय के ज्ञान के लिए हमें अलग से सङ्केत मानने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार हमें व्यक्तियों में सङ्केत मानने पर अनन्त शक्तियों की

कल्पना करनी पड़ेगी, क्योंकि संसार में गायें अनन्त्य है। इस प्रकार अनन्त्य दोष आ जाता है। यदि हम कुछ व्यक्तियों में सङ्केत मान लें और उसी से दूसरों का व्यवहार से ग्रहण करें तो असंकेतित अर्थ में भी अर्थबोध होने लगेगा। यथा–'शुक्ला गौः' कहने पर शुक्ल 'गो' में सङ्केतग्रह होने पर भी असङ्केतित 'कृष्णागौः' में भी गो पद की प्रवृत्ति होने लगेगी। यदि कुछ व्यक्तियों में संकेतग्रह मानकर शेष अन्य व्यक्तियों में बिना सङ्केतग्रह के अर्थबोध हो जाएगा तो नियम का उल्लंघन होने से व्यभिचार दोष आ जाता है। व्यभिचार का अर्थ है नियम का अतिक्रमण। नियम कहता है कि जिसमें बिना किसी व्यवधान के संकेत ग्रहण होता है वह उस शब्द का वाचक होता है।[9]

इस प्रकार आनन्त्य एवं व्यभिचार दोष आ जाने के कारण व्यक्ति में सङ्केत मानना उचित नहीं है। अतः मम्मट के अनुसार उपाधि में ही संकेत ग्रहण करना चाहिए।[10] मम्मट का यह मत व्याकरण दर्शन से अभिप्रेत है।

मम्मटाचार्य के अनुसार उपाधि दो प्रकार की होती है–(क) वस्तुधर्म (ख) वक्ता द्वारा अपनी इच्छा से सन्निवेशित (डित्थ आदि संज्ञा)। वस्तु धर्म भी दो प्रकार का होता है–सिद्ध धर्म और साध्य धर्म। सिद्ध धर्म भी दो प्रकार का होता है–(क) पदार्थ का प्राणपद या जीवनाधायक धर्म अर्थात् जाति। (ख) विशेषता का आधान करने वाला अर्थात् गुण। इसमें वस्तु का प्रथम प्राणपद धर्म जाति है।[11] जाति–किसी वस्तु को देखकर उसकी एक आकृति हमारे मनो मस्तिष्क में खिंच जाती है। यही आकृति ही जाति कहलाती है। यह वस्तु का प्राणपद धर्म अर्थात् नित्य धर्म है।[12]

'आकृतिर्जाति पदवाच्या' इस अन्तः स्थित में आकृति के सहारे ही हम किसी पदार्थ को पहचान लेते हैं। यथा– गौ शब्द की संकेतित आकृति (जाति) हमारे अन्तःकरण में विद्यमान है तो हम नवीन गौ के सामने आने पर ही उसे गौ रुप में जान लेते हैं, क्योंकि गौ की सामान्य आकृति हमारे अन्तःकरण में पहले से विद्यमान है। इन्हीं सब कारणों से जाति को सामान्य भी कहा जाता है। सामान्य की सामान्यतः परिभाषा है, जो नित्य हो, एक हो और अनेकों में समवेत रहती हो उसे सामान्य कहते हैं। सामान्य द्रव्य गुण तथा कर्म में रहता है। यह पर एवं अपर भेद से दो प्रकार का होता है। जो अधिक देश में रहे वह पर सामान्य है और जो अल्प स्थान में रहे वह अपर सामान्य है।[13] मम्मट ने जाति को और अधिक स्पष्ट करने के लिए भ्रमवश काव्यप्रकाश में एक गद्य वाक्य वाक्पदीय के नाम से उद्धृत कर दिया है। जबकि वाक्यपदीय पद्यबन्ध होने के कारण यह वाक्यपदीय का नहीं प्रतीत होता है। मम्मट से यह भूल इस कारण हुई, क्योंकि उन्होंने अभिधा एवं लक्षणा विवेचन मुकुलभट्ट के अभिधावृत्तमातृका के आधार पर किया है और मुकुलभट्ट ने उसे वाक्यपदीय के नाम से उद्धृत किया था।[14] जबकि यह वाक्यप्रदीप की दीपिका टीका में आया है। इस बात को डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी ने अभिधावृत्तमातृका के भाष्य लिखते समय स्पष्ट किया है।[15] मत यह इस प्रकार है– न हि गौः स्वरुपेण गौर्नापि अगौः, गोत्वाभिसम्बन्धातु गौः"[16] अर्थात् 'गोः' केवल स्वरुप से ही गौ नहीं है और न 'अगौः' ही है। 'गोत्व' के सम्बन्ध से ही उसे 'गो' कहते हैं, क्योंकि गोत्व को जाने बिना 'यह गौ है' यह नहीं जाना जा सकता अर्थात् गोत्व के ज्ञान से ही 'गो' शब्द का व्यवहार होता है।

'सिद्ध' के दूसरे भेद (विशेषता का आधान हेतु) के विषय में मम्मट का कथन है कि शुक्ल आदि गुणों के कारण ही सत्ता प्राप्त वस्तु अन्य सजातीय वस्तुओं से भिन्न है।[17] गुण रुप उपाधि वस्तु का सिद्ध धर्म है, वह नित्य एवं पदार्थ में समवेत होता है और वस्तु के विशेषता का हेतु है। गुण वे तत्त्व है जो किसी जाति के अन्दर अनेक व्यक्तियों को एक दूसरे से पृथक् करते हैं, यथा–शुक्ल, कृष्ण, नील आदि गुण ही गौ को एक दूसरे से पृथक् करते हैं।

'साध्य' रुप उपाधि क्रिया रुप है। क्रिया एक वस्तु धर्म है, किन्तु जाति और गुण के समान सिद्धरुप वस्तुधर्म नहीं है बल्कि साध्यरुप वस्तुधर्म है।[18] जो किसी कार्य का बोध कराते हैं जैसे चलना–फिरना उठना–बैठना आदि पूर्ण क्रिया के साथ उसका संज्ञात्मक रुप भी होता है जो क्रिया का बोध कराता है। जैसे–लेखन, पालन, पकना आदि।

यदृच्छा रुप उपाधि वस्तु की संज्ञा मात्र है। इसमें वस्तु के जाति, गुण एवं क्रिया नहीं रहते हैं। जैसे–डित्थ, डवित्थ आदि संज्ञा शब्द यदृच्छा शब्द माने जाते हैं। यह वक्ता द्वारा अपनी इच्छा से किसी व्यक्ति की ओर संकेतित व्यक्तिवाचक शब्द होते हैं।[19]

इस प्रकार मम्मट केवल व्यक्ति या जाति में संकेत न मानकर व्यक्ति के उपाधिभूत जाति, गुण, क्रिया एवं यदृच्छा आदि धर्मों में संकेतग्रह मानते हैं। वैयाकरण भी शब्द के चार प्रकार के अर्थ मानते हैं और जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा रुप चतुर्विध उपाधि में संकेतग्रह मानते हैं। इसी को प्रमाणित करने के लिए मम्मट ने महाभाष्यकार पतंजलि के मत को प्रमाण स्वरुप उद्धृत किया है– 'गौः शुक्लश्चलो डित्थ इत्यादौ 'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः' इति महाभाष्यकारः'[20] (द्रष्टव्य महाभाष्य में ऋलृक सूत्र) अर्थात् गौ, शुक्ल, चल और डित्थ आदि शब्दों की प्रवृत्ति होती है। मुकुलभट्ट ने भी मुख्य अर्थ के विषय में महाभाष्यकार के मत को लगभग इसी प्रकार उद्धृत किया है।[21] मम्मट के मत में व्यक्ति के चतुर्विध उपाधियों में संकेत मानने में कोई दोष नहीं है। वैयाकरणों की भाँति साहित्यशास्त्र में भी शब्द की उपाधि में संकेतग्रह स्वीकार किया गया है। जैसा कि साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ का स्पष्ट कथन है– 'सङ्केतो गृह्यते जातौ गुणद्रव्यक्रियासु च'[22] अर्थात् संकेत का ग्रहण जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया में ही करना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, कारिका–8
2. शब्द–व्यापारतो यस्य प्रतीतिस्तस्य मुख्यता। अर्थावसेयस्य पुनर्लक्ष्यमाणत्वमुच्यते।। अभिधावृत्तमातृका, मुख्यामुख्यपरिचय, कारिका –1
3. स हि यथा सर्वेभ्यो हस्तादिभ्योऽवयवेभ्यः पूर्वं मुखमवलोक्यते, तद्वदेव सर्वेभ्यः प्रतीयमानेभ्योऽर्थान्तरेभ्यः पूर्वमवगम्यते। तदेव, की वृत्ति, पृ. 2
4. स इति साक्षात्संकेतितः, काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, कारिका–8 की वृत्ति, पृ. 40
5. तदेव, सूत्र – 10
6. अगृहीतसंकेतस्य शब्दस्यार्थप्रतिपत्तेरभावात् संकेतसहाय एव शब्दोऽर्थं प्रतिपादयति। शब्दव्यापारविचारः पृ. – 1
7. काव्यप्रकाश (बालबोधिनी), द्वितीय उल्लास, पृ. 32
8. यद्यनप्यर्थक्रियाकारितया प्रवृत्तिनिवृत्तियोग्या व्यक्तिरेव, तथाप्यानन्त्याद्व्यभिचारच्च तत्र सङ्केतः कर्तुं न युज्यते इति, गौः शुक्लश्चलो डित्थ इत्यादीनां विषयविभागो न प्राप्नोतीति च तदुपाधावेव सङ्केतः। का0प्र0, द्वि0उ0, पृ. 31, 32
9. यस्य यत्राव्यवधानेन संकेतो गृह्यते स तस्य वाचकः। काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, पृ. 31
10. तदुपाधावेव संकेतः, तदेव, पृ. 33
11. का. प्र., द्वि उ., पृ. 33
12. आकृतिर्हि नित्या द्रव्यमनित्यम्, व्याकरणमहाभाष्यम्। प्र0 पस्प0, पृ. 39
13. नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्। द्रव्यगुणकर्मवृत्तिः। तद् द्विविधं परापरभेदात्। परं सत्ता, अपरं द्रव्यत्वादिः, तर्कसंग्रह, पृ. 105

14. अभिधावृत्तमातृका, उपाधि चतुष्टयवादः, पृ. 5
15. अभिधावृत्तमातृका, डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी, पृ0 8
16. काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, पृ. 33
17. द्वितीयो गुणः, शुक्लादिना हि लब्धसत्ताकं वस्तु विशिष्यते, तदेव, पृ0 34
18. साध्यः पूर्वापरीभूतावयवः क्रियारुपः, तदेव, पृ0 35
19. काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, पृ. 35
20. काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, पृ. 36
21. चतुष्टयी हि शब्दानां प्रवृत्तिर्भगवता महाभाष्यकारेणोपवर्णिता 'जातिशब्दा गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाश्चेति, अभिधावृत्तमातृका, उपाधिचतुष्यवाद, पृ. 4, 5
22. साहित्यदर्पण, द्वितीय परिच्छेद, पृ. 43